जैन

पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

अहिंसा तो अमृत है; जो इस अमृत के प्याले को पियेगा, वह अमर होगा, सुखी होगा, शान्त होगा।

ह्न गागर में सागर, पृष्ठ : **96**

वर्ष : 27, अंक : 22
फरवरी (द्वितीय)2005

सम्पादक : पण्डित रतनचन्द भारिल्ल
प्रबन्ध सम्पादक : पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी

आजीवन शुल्क : 251 रुपये
वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

शिविर एवं वार्षिकोत्सव सम्पन्न

इन्दौर (म.प्र.) : यहाँ साधनानगर स्थित श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति एवं विहरमान बीस तीर्थंकर जिनालय की स्थापना के पंचम वार्षिकोत्सव पर दिनांक २१ से २६ जनवरी, २००५ तक श्री १७० तीर्थंकर मण्डल विधान एवं आध्यात्मिक शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के मार्मिक प्रवचनों का लाभ बड़ी संख्या में श्रोताओं को मिला तथा श्रीमती कमलाजी भारिल्ल एवं पण्डित मनीषजी शास्त्री रहली के भी प्रवचन हुये।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित मनीषजी शास्त्री ने सम्पन्न कराये। अन्तिम दिन जिनेन्द्र शोभायात्रा निकाली गई तथा इन्दौर मुमुक्षु समाज द्वारा पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल का अभिनन्दन किया गया तथा पण्डित भारिल्लजी की अनुपम कृति 'ऐसे क्या पाप किये' की ५०० प्रतियाँ वितरीत की गई।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को ५००० रुपये साहित्य की कींमत कम करने हेतु प्राप्त हुये। सम्पूर्ण कार्यक्रम पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

ज्ञातव्य है कि इसी प्रसंग पर पूर्वी क्षेत्र पलासिया में बनने जा रहे भव्य स्वाध्याय भवन का भूमि शुद्धिकरण किया गया; जिसमें पण्डित भारिल्लजी एवं पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली का संबोधन प्राप्त हुआ।

ह्न मनोहरलाल काला

विधान सानन्द सम्पन्न

खडैरी (म.प्र.) : यहाँ अ. भा जैन युवा फैडरेशन शाखा खड़ैरी के तत्त्वावधान में दि. 26 से 31 जनवरी, 2005 तक नवलब्धी विधान का आयोजन किया गया। साथ ही अनेक धार्मिक प्रतियोगितायें भी सम्पन्न हुई।

विधि-विधान के कार्य पण्डित राजेन्द्रजी शास्त्री, खडैरी ने सम्पन्न कराये। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किये गये; जिसमें भरत-बाहुबली एवं बारात की वापसी नाटक सराहनीय रहे। इस अवसर पर शाखा का पुनर्गठन भी किया गया। **ह्न चेतन शास्त्री**

प्रतियोगिताएँ सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु शास्त्री तृतीय वर्ष के छात्रों द्वारा दिनांक 6 से 18 जनवरी, 2005 तक विभिन्न आध्यात्मिक एवं खेल-कूद प्रतियोगितायें सम्पन्न कराई गयी।

जिसमें **अन्ताक्षरी प्रतियोगिता** में अंकित जैन लूणदा एवं नीतेश जैन आरोन ने प्रथम, आशीष जैन जबेरा एवं राहुल जैन अलवर ने द्वितीय तथा सन्मति जैन एवं विवेक जैन पिड़ावा ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। **भजन प्रतियोगिता** में कु. परिणति पाटील जयपुर एवं कु. स्वाति जैन जयपुर ने प्रथम, निखिल जैन कोतमा ने द्वितीय तथा अंकित जैन एवं अनेकान्त जैन ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। **तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता** (शास्त्री वर्ग) में अंकुर जैन देहगाँव ने प्रथम, सम्भव जैन नैनधरा ने द्वितीय तथा राहुल जैन ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। **धर्म विमुख पीढ़ी : कारण स्वयं, परिवार या मित्र** विषय पर आयोजित शास्त्री वर्ग की वाद-विवाद प्रतियोगिता में पक्ष से अंकुर जैन एवं रोहन रोटे कोल्हापुर ने तथा विपक्ष से अनुप्रेक्षा जैन मुम्बई एवं देवेन्द्र जैन अकाझिरी ने क्रमश: प्रथम तथा द्वितीय स्थान प्राप्त किया। **तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता** (उपाध्याय वर्ग) में कु. परिणति पाटील जयपुर ने प्रथम, गजेन्द्र जैन उदयपुर ने द्वितीय एवं चेतन जैन बक्स्वाहा ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। **कर्म बलवान या जीव** विषय पर आयोजित उपाध्याय वर्ग की वादविवाद प्रतियोगिता में पक्ष से प्रसन्न शेटे कोल्हापुर एवं अनेकान्त भारिल्ल मुम्बई ने प्रथम तथा तपिश जैन ने द्वितीय, विपक्ष से कु. परिणति पाटील ने प्रथम एवं गजेन्द्र जैन ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। **श्लोक पाठ प्रतियोगिता** में रोहन रोटे प्रथम, राहुल जैन ने द्वितीय एवं संभव जैन ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। **Main Doctrines of Jain Religion** विषय पर आयोजित अंग्रेजी भाषा की प्रतियोगिता में रोहन रोटे ने प्रथम, कु. परिणति पाटील ने द्वितीय एवं अनेकान्त भारिल्ल ने तृत्तीय स्थान प्राप्त किया। **काव्य पाठ प्रतियोगिता** में अंकुर जैन ने प्रथम, आदित्य जैन खुरई ने द्वितीय एवं राहुल जैन ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

समस्त प्रतियोगितायें अभिषेक जैन सिलवानी, आशीष जैन जबेरा एवं चैतन्य जैन खडैरी के मुख्य संयोजकत्व में सम्पन्न हुई।

साधना चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन प्रतिदिन प्रात: 6:45 बजे अवश्य सुनें।

साधना चैनल आपके यहाँ न आता हो तो श्री पंकज जैन (साधना चैनल) से 09312506419 नम्बर पर सम्पर्क करें।

सम्पादकीय –

पञ्चास्तिकाय परिशीलन

24

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे ....)

३७ वीं गाथा पर प्रवचन करते हुए गुरुदेवश्री कानजी स्वामी कहते हैं ह्न ''इस गाथा में मुक्तावस्था में जीव का सर्वथा अभाव माननवाले अनित्य एकान्त पक्ष के धारक बौद्धमतानुयायी जीवों को समझाने के लिए कहा है कि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। जिस जीव ने उत्कृष्ट पुरुषार्थ करके मुक्तदशा प्रगट की हो और उसकी भिन्न सत्ता का सर्वथा अभाव हो जाये ह्न ऐसा नहीं हो सकता।

आत्मा का अविनाशी स्वभाव है, संसार अवस्था में आत्मा की पर्याय अशुद्धतारूप में पलटती है और मोक्ष होने पर शुद्धता रूप से पलटती है, द्रव्य का नाश नहीं होता। जैसे सुवर्ण शुद्ध होता है, वैसे ही जीव द्रव्यरूप से कायम रहकर अशुद्ध अवस्था से मुक्त होता है और परमानन्दमय अनन्तकालतक ज्ञान-आनन्दरूप रहता है।''

विनाशी व्ययभाव के विषय में कहा है कि ''यदि मोक्ष में जीवद्रव्य का ही अभाव होता है तो संसार में प्रतिसमय पर्याय का नाश होने पर भी जीव का नाश नहीं होता और सिद्ध भगवान में जीव का सर्वथा विनाश हो ह्न यह कैसे हो सकता है ? वहाँ भी मात्र प्रतिसमय पर्याय बदलती है, द्रव्य तो त्रिकाल रहता है। यदि मोक्ष में जीव नित्य नहीं तो अनित्य पर्याय धर्म किसका ? मुक्तदशा में केवलज्ञान भी अनित्य ह्न इसप्रकार सिद्ध में भी द्रव्य अपेक्षा से अविनाशीपना और पर्याय अपेक्षा से विनाशीपना है।

भव्यभाव के स्पष्टीकरण में गुरुदेव श्री कानजी स्वामी कहते हैं कि ह्न यहाँ भव्यभाव का आशय यह है कि परमानन्ददशा का नयी-नयी अवस्थारूप होना अभव्यभाव है। केवलज्ञान, केवलदर्शन अनंतसुख, अनन्तवीर्य नयी-नयी अवस्था में होते हैं, यह भव्यभाव है। सिद्धदशा में आत्मा नहीं हो तो भव्यभाव नहीं हो सकता और भव्यभाव के अभाव में सिद्ध आत्मा नहीं हो सकते। इसलिए तू ऐसी श्रद्धा कर कि भव्यभाव का सिद्ध आत्मा उपादेय है।

''यहाँ जो अभव्यजीव मोक्ष के योग्य नहीं, उस जीव की बात नहीं है, यहाँ तो शुद्धात्मा का भान करके, परमानन्ददशा प्रगट करने से विकार व मलिनता के न होने को अभव्य भाव कहते हैं। सिद्ध कभी भी अशुद्ध नहीं होते। इसका कारण कर्म का अभाव नहीं; बल्कि अशुद्धतारूप नहीं होना उनका अभव्यभावरूपी धर्म है। कर्म तो जड़ है। कर्मों से संसार और कर्मों के अभाव से मोक्ष नहीं है।

यदि सिद्ध होनेवाले जीवों में आत्मा नहीं रहता तो भव्य-अभव्य भाव किसमें रहेंगे ? मुक्ति किसकी होगी, इसलिये निश्चित है कि वहाँ आत्मा कायम रहता है और उन सिद्धों को ये दोनों भव्यभाव और अभव्यभाव होते हैं।'' ●

पिछली सैंतीसवीं गाथा में यह स्पष्ट किया है कि मुक्ति में जीव का सर्वथा अभाव नहीं हो जाता। वहाँ जीव का अस्तित्व सादि-अनन्त काल तक (सदैव) रहता है। मुक्ति में जीव का सर्वथा अभाव माननेवालों की मान्यता यथार्थ नहीं है।

गाथा-३८

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण।।३८।।

(हरिगीत)

कोई वेदे कर्म फल को, कोई वेदे करम को।
कोई वेदे ज्ञान को निज त्रिविध चेतकभाव से।।३८।।

इस अड़तीसवीं गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि विविध चेतक भाव द्वारा एक जीव राशि कर्मों के फल को, दूसरी प्रकार की जीव राशि कार्य को तथा तीसरी प्रकार की जीवराशि ज्ञान को चेतती है, वेदती है।

टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं कि ''यहाँ आत्मा के चेतयितृत्व गुण की व्याख्या है। एक चेतयिता (स्थावर) तो ऐसे हैं जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन हैं, और उनका प्रभाव अति प्रकृष्ट ज्ञानावरण कर्म से ढक (मुंद) गया है, वे अपने उस मुद्रित चेतकस्वभाव द्वारा सुख-दुखरूप कर्मफल को ही प्रधानता से भोगते हैं, चेतते हैं; क्योंकि उनका अति प्रकृष्ट वीर्यान्तराय से कार्य करने का सामर्थ्य नष्ट हो गया है।

दूसरे प्रकार के चेतयिता (त्रस) वे हैं, जो अतिप्रकृष्ट मोह से मलिन हैं और जिनका प्रभाव प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंद गया है ह्न ऐसे चेतकस्वभाव द्वारा अल्प वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से मिश्रितपने सुख-दुखरूप कर्मफल के अनुभव के साथ कार्य करने की प्रधानता से ही चेतते हैं, वे कर्मचेतनावाले हैं। इन्हें अल्प वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशम से इष्टानिष्ट विकल्परूप कर्म करने की सामर्थ्य प्राप्त हुई है।

तीसरे प्रकार के चेतयिता (अरहंत-सिद्ध आत्मा) वे हैं, जिनमें से सकल मोह कलंक धुल गया है तथा समस्त ज्ञानावरण के विनाश के कारण जिसका समस्त प्रभाव अत्यन्त विकसित हो गया है ह्न ऐसे चेतक स्वभाव द्वारा उस ज्ञान को ही चेतते हैं जो कि अपने से अभिन्न स्वाभाविक सुखवाला है; क्योंकि उन्होंने समस्त वीर्यान्तराय के क्षय से अनन्त वीर्य को प्राप्त किया है, इसकारण उनको विकारी सुख-दुखरूप कर्मफल निर्जरित हो गया है। वे अत्यंत कृतकृत्य हो गये हैं।''

यद्यपि उन्हें अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है; परन्तु सम्पूर्ण विकार और अल्पज्ञान नष्ट हो जाने से वीर्य कर्मचेतना व कर्मफलचेतना को नहीं रचता।

आचार्य जयसेन टीका में कहते हैं कि एक जीवराशि तो निर्मल शुद्धात्मानुभूति के अभाव से उपार्जित प्रकृष्टता मोह से मलीमस चेतकभाव द्वारा प्रच्छादित सामर्थ्यवाली होती हुई स्व-सामर्थ्य को प्रगट नहीं करती, अत: मात्र कर्मफल का ही वेदन करती है।

दूसरी जीव राशि चेतकभाव से सामर्थ्य प्रगट हो जाने के कारण इच्छा पूर्वक इष्टानिष्ट विकल्परूप कर्म का वेदन करती है तथा तीसरी जीवराशि उसी चेतकभाव से विरुद्ध आत्मानुभूति की भावना द्वारा कर्मकलंक को सर्वथा नष्ट कर देने के कारण केवलज्ञान द्वारा कर्मफल, कर्म तथा ज्ञानचेतना का सम्पूर्ण पदार्थों का वीतराग भाव से भेदाभेदरूप अनुभव करती है।

इस गाथा के एवं टीकाओं के भाव को ग्रहण करते हुए कविवर हीरानंदजी अपनी काव्यशैली में कहते हैं कि ह्न

(दोहा)

एक करमफल अनुभवै, एक करम इक ग्यान।
जीवरासि चेतक लसै, त्रिविध चेतना जान ।।२०३।।

(सवैया इकतीसा)

मोहसौं मलीन जीव छादित है ग्यानभाव,
दुःख-सुखरूप कर्म-फलकानुभोगी है।
दुख-सुख-लहरी मैं राग-द्वेष-मोह बसै,
ग्यानावरनादि नाना कर्म का नियोगी है।।
मोहमूल दूरि भयौ कर्म सर्व नासि गयौ,
सुद्ध-चेतना-विलास ग्यान उपयोगी है।
कर्म-मल-कर्मरूप चेतना असुद्ध हेय,
उपादेय सुद्ध-ग्यान चेतनानुजोगी है ।।२०४।।

उक्त गाथा पर प्रवचन करते हुए गुरुदेवश्री कहते है कि ''जीव असंख्यात प्रदेशी होने पर भी उसकी पर्याय में अन्तर पड़ता है; परन्तु वह अन्तर किसी पर के कारण नहीं, वह भी अपने अस्तिकाय का ही स्वरूप है।''

''एक जीवराशि कर्मों के निमित्त से सुख-दुखरूप फल को वेदती है। ये जीव अनन्त हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि जीव, आलू-शकरकन्द आदि कन्दमूल के जीव हर्ष-शोक को वेदते हैं। आलू के एक छोटे से कण में असंख्य शरीर हैं और प्रत्येक शरीर में अनन्त आत्मायें हैं।''

''जो नित्य निगोद का जीव अभी तक व्यवहार राशि में नहीं आया, अनादिकाल से वहीं है, वह कर्म के कारण वहाँ नहीं है, अपितु उसका वैसा ही पर्याय स्वभाव है। वहाँ कर्मफल चेतना प्रधान है।''

''लट, चींटी, मनुष्य, देव, नारकी आदि जीवों में कर्तापने की प्रधानता है, कर्म तो निमित्तमात्र है; परन्तु अज्ञानी प्राणी पर के कर्तृत्व की मिथ्या भ्रान्ति करता है।''

''यदि ऐसा माना जाय कि जीव की पर्याय में राग-द्वेष, हर्ष-शोक हैं ही नहीं तो जीव का अस्तिकायपना ही उड़ जाता है। राग-द्वेष करें और हर्ष-शोक भोगें तो वे सब अपने में अपने कारण से ही होते हैं। ऐसा जीवास्तिकाय का ही पर्याय स्वरूप है ह्न इसप्रकार दृष्टि करके वे (राग-द्वेष की) पर्यायें आदरणीय नहीं हैं ह्न इसप्रकार उससे दृष्टि हटाकर अपने शुद्ध चैतन्य की दृष्टि करना ही धर्म है।''

आत्मा किसका वेदन कर सकता है ह्न यह बात चल रही है। एक स्थावर जीवों की राशि ऐसी है कि वह अपने सुख-दुखरूप कर्मफल को भोगती है, हर्ष-शोक का वेदन करती है, वहाँ कर्मफल की मुख्यता है।

यहाँ गुरुदेवश्री विशेष बात यह कहते हैं कि वस्तुत: 'पृथ्वीकाय आदि के स्थावर जीव अपने शरीर का, फावड़ा-शस्त्र-कुल्हाड़ी आदि या संयोगों का अनुभव नहीं करते; क्योंकि वे जीव उक्त पर-वस्तुओं का तो स्पर्श ही नहीं करते। शास्त्रों में स्थावर जीवों के छेदन-भेदन आदि दु:खों का जो कथन है, वह तो निमित्त की अपेक्षा से है। वस्तुत: तो वे अपने ज्ञानस्वभाव को चूककर पर में सुख है ह्न ऐसी मिथ्या मान्यता के कारण हर्ष-विषाद का वेदन कर रहे हैं।

दूसरी त्रस जीवराशि ऐसी है कि वह पर के तथा राग के कर्तापनेरूप अभिमान सहित राग-द्वेष को भोगती है। उनके राग-द्वेष के कर्तृत्व की मुख्यता है। लट-चींटी, हाथी, मनुष्य, देव, नारकी आदि जीव स्वयं में राग करने रूप भाव करते हैं।''

''जीव में चेतना नामक त्रिकाली गुण है, उसकी पर्याय में या तो वह जागृत रहे या अजागृत रहे; परन्तु पर का वह कुछ नहीं कर सकता। एक जीवराशि हर्ष-शोक की मुख्यता से अजागृत रहती है और दूसरी जीवराशि राग-द्वेष की मुख्यता से अजागृत रहती है।''

अब तीसरी उस जीवराशि की बात करते हैं, ''जो शुद्धज्ञान का ही अनुभव करती है। वह केवली भगवन्तों की एवं सिद्ध जीवों की राशि है। यद्यपि चौथे गुणस्थान में धर्मी जीवों को आत्मा का भान है। 'मैं शुद्ध चिदानन्दस्वरूप हूँ, शरीरादि का करना मेरा कार्य नहीं है, राग-द्वेष मेरा स्वरूप नहीं है।' ऐसा भान होने से वहाँ ज्ञान चेतना की शुरूआत हो जाती है, तथापि अभी वहाँ साधक को अस्थिरताजन्य राग-द्वेष होते हैं, इसकारण उसकी ज्ञानचेतना को गौण करके जिनको पूर्ण ज्ञानचेतना प्रगट हुई है ह्न उन केवली और सिद्धों को यहाँ लिया गया है। इसप्रकार केवली भगवान तथा सिद्ध भगवान अपने ज्ञान का अनुभव करते हैं। स्वर्ग-नर्क को जानते हैं तो भी उनको राग-द्वेष अथवा हर्ष-शोक नहीं होता। इसप्रकार चेतना के तीन प्रकार कहे इसके अतिरिक्त कोई अन्य काम करना जीव की सामर्थ्य में नहीं है।

यह पंचास्तिकाय ग्रन्थ है। इसमें प्रत्येक अस्तिकाय की स्वतंत्रता का ज्ञान करने का प्रयोजन है। जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय से सर्वथा भिन्न स्वतंत्र है। यह ज्ञान करना है।

'' हर्ष-शोक तथा राग-द्वेष चैतन्य की सत्ता में होते है, जड़ की सत्ता में या जड़ के कारण नहीं होते हैं। पर्याय में होनेवाले ये दोष जीव के हैं, परन्तु वे एक समय के है ह्न इसप्रकार का ज्ञान कराया है।''

यहाँ पंचास्तिकाय में ज्ञानप्रधान कथन है। इस कथन के हेतु आत्मा को पर से पृथक् दर्शाकर यह कहा है कि ह्न राग-द्वेष जीव के शुद्ध द्रव्य में नहीं हैं। यहाँ कहा गया है कि एकेन्द्रिय जीव हर्ष-शोक का वेदन करता है और त्रस जीव राग-द्वेषरूप परिणाम करता है; परन्तु ये जीवों को अपने में अपने कारण होते हैं, पर के कारण नहीं। राग-द्वेष चैतन्य की सत्ता में होते है।

अनेक जीव ऐसे हैं कि जिन्हें विशेषत: ज्ञानावरणादि कर्मों का उदय है। स्वयं को परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव प्रगट होना चाहिए, परन्तु वह स्वयं अपनी पर्यायगत योग्यता के कारण प्रगट नहीं करता, उसमें ज्ञानावरण कर्म तो निमित्तमात्र है। अपना दृष्टास्वभाव परिपूर्ण प्रगट नहीं करने में दर्शनावरण कर्म निमित्त है। अपना वीर्य अपने में स्फुरित होना चाहिए, उसे अपने में स्फुरित नहीं करने में अन्तराय कर्म निमित्त है। अपने स्वरूप की असावधानी में मोहनीय कर्म निमित्त है। इन कर्मों के निमित्त से अपने ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुखादि हीनदशारूप अथवा विपरीतरूप परिणमित होते हैं। यहाँ कर्म के निमित्तपने का स्वयं की हीन अथवा विपरीत पर्याय का तथा सम्पूर्ण

(शेष पृष्ठ 8 पर ....)

तत्वचर्चा

प्रवचनसार का सार

22

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे ....)

अब आचार्य इन पंक्तियों के आधार से इस अधिकार का समापन करते हैं ह्न ‘‘**उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणं संपत्ती**

ह्न इसप्रकार पाँचवी गाथा में प्रतिज्ञा करके,

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिदिट्ठो

ह्न इसप्रकार ७वीं गाथा में साम्य ही धर्म है ह्न ऐसा निश्चित करके,

परिणमदि जेण दव्वं तत्कालं तम्मयं ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो ।।

ह्न इसप्रकार ८वीं गाथा में जो आत्मा का धर्मत्व कहना आरंभ किया और जिसकी सिद्धि के लिए ह्न

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्दसंपओग
जुदो। पावदि णिव्वाणसुहं.................।।

ह्न इसप्रकार११वीं गाथा में निर्वाणसुख के साधनभूत शुद्धोपयोग का अधिकार आरंभ किया, विरोधी शुभाशुभ उपयोग को हेय बताया, शुद्धोपयोग का वर्णन किया, शुद्धोपयोग के प्रसाद से उत्पन्न होनेवाले आत्मा के सहज ज्ञान और आनन्द को समझाते हुए ज्ञान और सुख के स्वरूप का विस्तार किया; अब किसी भी प्रकार शुद्धोपयोग के प्रसाद से उस आत्मा के धर्मत्व को सिद्ध करके परमनिस्पृह, आत्मतृप्त ऐसी पारमेश्वरी प्रवृत्ति को प्राप्त होते हुए, कृतकृत्यता को प्राप्त करके अत्यन्त अनाकुल होकर, भेदवासना की प्रगटता का प्रलय करते हुए **‘मैं स्वयं साक्षात् धर्म ही हूँ’** ह्न इसप्रकार रहते हैं।’’

टीका की इन पंक्तियों में ९२ गाथाओं में वर्णित समस्त विषय को समेट लिया है। प्रथम उन्होंने शुद्धोपयोग की चर्चा की, उसके फल में प्राप्त होनेवाली अतीन्द्रिय ज्ञान व अतीन्द्रिय सुख का प्रकरण आया; इसके पश्चात् शुभपरिणामाधिकार की चर्चा की; जिसमें वास्तविक मोक्ष का मार्ग बताया कि जो अरहंत को द्रव्य-गुण-पर्याय से जानता है, वह आत्मा को जानता है एवं उसका मोह नाश को प्राप्त होता है। फिर उपायान्तर की चर्चा की एवं उसमें यह प्रेरणा दी कि शास्त्रों का स्वाध्याय करो।

शुद्धोपयोग तो मुक्ति प्राप्त करने का उपाय है एवं शास्त्र-स्वाध्यायवाला शुभभाव उस मार्ग का सहयोगी है, उपायान्तर है। वह इसका प्रतिद्वंद्वी नहीं है। इस शुभपरिणामाधिकार को गम्भीरतापूर्वक ध्यान से पढ़ने के बाद यह स्पष्ट होगा कि यह वही अधिकार है, जिसमें शुभभाव को अभिसारिका कहा है। जो सम्पूर्ण निर्दोष मुनिलिंग का पालन करता है ह्न ऐसे मुनि के क्रियाकाण्ड और शुभभाव का भी यहाँ निषेध किया गया है; किन्तु स्वाध्यायवाले शुभभाव को उपायान्तर बताया है एवं इसका समर्थन भी किया है। यही कारण है कि स्वाध्याय को परमतप कहा गया है।

गृहस्थों के षट् आवश्यक में भी स्वाध्याय समाहित है और मुनियों के षट् आवश्यक में भी स्वाध्याय समाहित है। मुनियों के देवपूजा, गुरूपासना आदि नहीं है; परंतु स्वाध्याय उन्हें भी अनिवार्यरूप से कहा गया है। अन्यत्र द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव संबंधी बाधाएँ उपस्थित हो सकती हैं; लेकिन स्वाध्याय में ये बाधाएँ भी उपस्थित नहीं होतीं।

रात्रि में भोजन करना ठीक नहीं है, परन्तु स्वाध्याय दिन-रात में आप कभी भी कर सकते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि हमारा पूरा समय सफर में ही गुजर जाता है; हम वहाँ कैसे देवदर्शन करें, कैसे पूजन करें और कैसे प्रवचन सुने ? उनसे कहते हैं कि आप रेल में, प्लेन में मोक्षमार्गप्रकाशक, प्रवचनसार आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय तो कर ही सकते हैं। शास्त्रों में ऐसी जगह पढ़ने के लिए कोई मनाही नहीं है। बस में गंदी-गंदी कहानियाँ, अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं; उसकी जगह यदि आबाल-वृद्ध सभी स्वाध्याय करें तो इससे स्वाध्याय के लिए समय की कमी नहीं रहेगी।

महिलाओं के मुनिधर्म नहीं हो सकता है, पुरुषों को यह (विशिष्ट) व्रत नहीं हो सकता। यदि कोई पुरुष सुगंधदशमी व्रत करता है तो उसपर हँसा जाता है और कहा जाता है कि यह तो महिलाओं का व्रत है; परन्तु स्वाध्याय में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसमें महिला पुरुष ऐसा भेद नहीं है और न ही भाषा की कोई समस्या है। हमारे सद्‌भाग्य से अब प्रत्येक भाषा में लगभग सभी ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

यदि हम टोडरमलजी के समय का विचार करें तो हमें समझ में आएगा कि आज हम कितने भाग्यशाली हैं। तब संस्कृत-प्राकृत पढ़ानेवालों की व्यवस्था नहीं थी। आज तो इसे पढ़ाने के लिए कॉलेज बने हुए हैं। तब मात्र संस्कृत-प्राकृत में ही धार्मिक ग्रन्थ थे, जनभाषा में कोई ग्रन्थ नहीं था; अत: शास्त्रस्वाध्याय करना बहुत कठिन था।

आज हमारे पास सभी ग्रन्थ उपलब्ध हैं; वह भी अत्यल्प मूल्य में; कभी-कभी वे आधी कीमत में भी उपलब्ध हो जाते हैं। पहले जमाने में कोई सेठ अपने बेटे के लिए ग्रन्थ लिखाये तो उसके १०० रु. देने पड़ते थे। वे १०० रु. आज के एक लाख रुपए के बराबर हैं। इसप्रकार तब एक किताब एक लाख रु. में मिलती थी; आज वही किताब २० रु. में मिलती है।

लोग शिकायत करते हैं कि महंगाई बढ़ गई है; लेकिन इस विश्लेषण से तो शास्त्रों के सन्दर्भ में महंगाई घटी है। हमारे जैनसमाज में करोड़ों के कार्यक्रम तैयार हो रहे है। मुमुक्षु, गैरमुमुक्षु सभी बड़े-बड़े स्मारक खड़े कर रहे हैं। पहाड़ियाँ कटकर तीर्थ बन रहे हैं। इसकी तुलना में शास्त्रों में कितना खर्चा होता है ?

जिन्हें नाम कमाना है, उन्हें भी अपनी राशि शास्त्रों में ही खर्च करने में लाभ है। यदि किसी व्यक्ति ने किसी गाँव में मंदिर बनाया और उसपर अपना नाम लिख दिया तो उस गाँव में जो व्यक्ति जाएगा, वहाँ उस मंदिर को देखेगा; मात्र उसे ही पता चल पावेगा, अन्य को नहीं।

यदि आपने १००० रु. किसी ग्रंथ की कीमत कम करने में दिए और उसकी १०,००० प्रतियाँ छपीं तो आपका नाम १०,००० गाँवों में पहुँच जाएगा। यदि यह व्यक्ति १०,००० बार अपना नाम एक पर्चे पर छपाता तो १,००० रु. से भी अधिक खर्चा आता; फिर भी उसे कोई पढ़नेवाला ही नहीं मिलता। समयसार महाशास्त्र के साथ, कुन्दकुन्ददेव के ग्रन्थ में इसका नाम है; इसलिए इसके नाम को भी लोग घर में सम्हालकर रखते हैं। इसप्रकार नाम भी कमाना है तो भी शास्त्र में ही अपनी राशि को लगाना लाभदायक है।

पंचकल्याणक में इन्द्र बनने के लिए पाँच-पाँच लाख रुपए खर्च करते हो। वहाँ तो मात्र एक बार आपके लिए एक वाक्य बोलने को दिया

जाता है; पर इतने खर्चे में तो सम्पूर्ण हिन्दुस्तान के मंदिरों में समयसार पहुँच सकता है, सारे मंदिरों में प्रवचनसार पहुँच सकता है।

मैं यहाँ ऐसा नहीं कह रहा हूँ, वहाँ पैसे खर्च नहीं करना। मैं तो मात्र तुलना कर रहा हूँ। वहाँ भी खर्च करना और यहाँ भी खर्च करना; परंतु तुलना करना भी सीखना। इसपर गम्भीरता से विचार करना जरूरी है कि क्या जिनवाणी को घर-घर पहुँचाने का काम वस्तुत: श्रेष्ठतम नहीं है?

आचार्यदेव ने स्वयं ही शुभभावों का बड़ी निर्दयता से निषेध किया है; परन्तु शास्त्रस्वाध्याय को उपायान्तर के रूप में स्थापित किया है।

स्वयं स्वाध्याय करो एवं दूसरे को भी स्वाध्याय करवाओ। घर में बैठकर यदि पाँच व्यक्ति मिलकर तत्त्वाभ्यास करते हैं तो वह महान कार्य है; उससे अपना घर पवित्र होता है। जिसप्रकार घर में थोड़ी-सी बदबू आती हो तो हम अगरबत्ती जला देते हैं। यदि घर में स्वाध्याय या तत्त्वचर्चा शुरू होती है तो घर में जो दुर्भावों की दुर्गन्ध है, वह साफ हो जाती है।

१० मिनट पूर्व जो टी.वी. की गंदगी घर में फैली थी; घर में तत्त्वचर्चा शुरू करेंगे तो वह स्वयमेव ही निकल जाएगी, पर्यावरण की शुद्धि हो जाएगी। स्वाध्याय घर-घर को शुद्ध करेगा, मंदिर को शुद्ध करेगा अर्थात् पर्यावरण को शुद्ध करेगा।

पूजा अपने विचार भगवान के सम्मुख प्रगट करना है; किन्तु स्वाध्याय भगवान की बात सुनना है। आप ही विचारिए कि अपनी बात भगवान को सुनाना अधिक महत्त्वपूर्ण है या भगवान की बात सुनना अधिक महत्त्वपूर्ण है।

वस्तुत: अपनी बात भगवान को कहने की जरूरत ही नहीं है; क्योंकि लिखा है कि ह्न

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाए सो तुम जानत जिनेश।

हे भगवन्! आपको जाने बिना मैंने जो क्लेश उठाए हैं, उन्हें आप भलीभाँति जानते हैं; क्योंकि आपको केवलज्ञान है।

हम नहीं कहेंगे तो भी वे हमारी दशा जानते हैं; पर आप उन्हें बताओ तो भी उन्हें कोई ऐतराज नहीं है।

भगवान से यदि पूछे कि हे भगवन्! इन दु:खों से छूटने का क्या उपाय है; तब वे भी वही उपाय बताएँगे जो आचार्यदेव ने यहाँ बताया है। आजतक जितने जीव इस दु:ख से छूटे हैं, वे इसी उपाय से छूटे हैं, आज भी छूट रहे हैं और जो भविष्य में छूटेंगे वे भी इसी उपाय से छूटेंगे।

आचार्यदेव कहते हैं कि जो शास्त्र में लिखा है; वह सब भगवान की ही बातें हैं। सभी शास्त्र जिनोपदिष्ट ही है। अत: स्वाध्याय करना उपायान्तर है। असली उपाय प्राप्त करने का यह उपाय है।

यह मोहमुक्ति का मार्ग सभी तीर्थंकरों ने गणधरदेवों की उपस्थिति में, सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, सन्तों की उपस्थिति में बताया है। अत: इसमें किसी भी प्रकार की शंका-आशंका करना उचित नहीं है।

शंका-आशंका करने से हाथ तो कुछ आनेवाला नहीं है; किन्तु इस मार्ग के लाभ से हम अवश्य वंचित हो जावेंगे।अत: सर्व संकल्प-विकल्पों से विराम लेकर शास्त्रस्वाध्याय के माध्यम से द्रव्य-गुण-पर्यायों का जानने का प्रयास करना चाहिए, समस्त लोक में से निज भगवान आत्मा को पहिचान कर उसी में जम जाना, रम जाना चाहिए। एकमात्र यही मार्ग है।

अत: सभी लोग जिनवाणी के स्वाध्याय करने का संकल्प लें ह्न इस मंगल भावना से विराम लेता हूँ।

नौवाँ प्रवचन

अबतक प्रवचनसार परमागम के ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार पर चर्चा चली; अब ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार आरंभ करते हैं। इस अधिकार को आचार्य जयसेन ने सम्यग्दर्शन अधिकार नाम दिया है।

आत्मा के कल्याण के लिए जगत में जो जाननेयोग्य पदार्थ हैं; उन सभी पदार्थों का वर्णन इस ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार में होगा।

पहले सभी द्रव्यों की सामान्य चर्चा करेंगे; उसके बाद प्रत्येक द्रव्य की अलग-अलग विशेष चर्चा करेंगे। तत्पश्चात् ज्ञान और ज्ञेयों की भिन्नता का स्वरूप स्पष्ट करेंगे।

इसप्रकार यह ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार तीन अधिकारों में विभक्त है; जो इसप्रकार हैं ह्न १. द्रव्यसामान्यप्रज्ञापन अधिकार, २. द्रव्यविशेषप्रज्ञापन अधिकार और ३. ज्ञान-ज्ञेयविभागाधिकार।

द्रव्यसामान्यप्रज्ञापन अधिकार प्रवचनसार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है; क्योंकि इसमें प्रतिपादित वस्तुस्वरूप जबतक हमारे ख्याल में नहीं आएगा, तबतक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सम्यग्दर्शन का विषयभूत जो भगवान आत्मा है और जिसकी चर्चा समयसार में की जाती है; वह भगवान आत्मा इस प्रवचनसार के द्रव्यसामान्यप्रज्ञापन की पृष्ठभूमि पर ही समझा जा सकता है।

अत: द्रव्यसामान्यप्रज्ञापन अधिकार में जो वस्तु की द्रव्य-गुण-पर्यायात्मक व्यवस्था बताई गई है; सर्वप्रथम उसकी चर्चा करते हैं ह्न

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया।।९३।।
जो पज्जएसु णिरदा जीवा परसमइग त्ति णिद्दिट्ठा।
आदसहावम्हि णिदा ते सगसमया मुणेदव्वा।।९४।।

(हरिगीतिका)

गुणात्मक हैं द्रव्य एवं अर्थ हैं सब द्रव्यमय।
गुण-द्रव्य से पर्यायें पर्ययमूढ़ ही हैं परसमय।।९३।।
पर्याय में ही लीन जिय परसमय आत्मस्वभाव में।
थित जीव ही हैं स्वसमय ह्न यह कहा जिनवरदेव ने।।९४।।

पदार्थ द्रव्यस्वरूप है, द्रव्य गुणात्मक कहे गये हैं और द्रव्य तथा गुणों से पर्यायें होती हैं। पर्यायमूढ जीव परसमय (अर्थात् मिथ्यादृष्टि) हैं।

जो जीव पर्यायों में लीन हैं, उन्हें परसमय कहा गया है; जो जीव आत्मस्वभाव में स्थित हैं; वे स्वसमय जानने।

जो मात्र पर्यायों को ही जानते हैं, उनको ही सम्पूर्ण तत्त्व समझ लेते हैं; वे जीव अज्ञानी, परसमय और मिथ्यादृष्टि हैं।

जो सम्यग्दृष्टि हैं, जो मुक्ति के मार्ग में लगे हुए हैं; जिन्होंने सच्चा सुख प्राप्त करने का उपाय प्राप्त कर लिया है; ऐसे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती से आगे के सभी जीव स्वसमय कहलाते हैं।

जो द्रव्यों को नहीं जानते हैं, गुणों को नहीं जानते हैं और मात्र पर्यायों को जानकर उसमें ही अपनापन स्थापित कर लेते हैं, वे अज्ञानी हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। वे पर्यायमूढ हैं; क्योंकि वे पर्यायों में एकत्वबुद्धि धारण करनेवाले हैं।

(क्रमश:)

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

कहानी –

मान से मुक्ति की ओर

(गतांक से आगे....)

यद्यपि सेठ जिनचन्द्र पिता के जमाने से चले आ रहे परम्परागत प्रक्षाल-पूजन और प्रवचन के नियम का निर्वाह बराबर करता था; भले दो-चार श्रोता ही क्यों न हों; पर वह शास्त्रस्वाध्याय भी अवश्य करता था; क्योंकि स्वाध्याय भी उसके मान-पोषण का एक साधन था। मौका मिलते ही वह उस अभिमान के भाव को व्यक्त किये बिना भी नहीं रहता था।

वह कहता ह्न ''भैया ! क्या बताऊँ समाज की दशा ! यदि मैं प्रक्षाल, पूजा और प्रवचन न करूँ तो बिचारे भगवान दो-दो बजे तक बिना प्रक्षाल-पूजा के ही बैठे रहेंगे; क्योंकि साप्ताहिक बारीवालों का तो कोई ठिकाना ही नहीं। उन्हें तो जब टाइम मिलेगा, तब आयेंगे और बेगार जैसी टाल कर चले जायेंगे। एक मैं ही हूँ, जो सबेरे समय पर प्रक्षाल-पूजा हो जाती है। यदा-कदा जब मैं नहीं होता, बाहर चला जाता हूँ, तब ऐसा ही होता है।

''मनुष्य तीन श्रेणी के होते हैं ह्न 1. उत्तम 2. मध्यम और 3. अधम।

उत्तम पुरुष वह है, जो दूसरों की गलती का दुष्परिणाम देखकर स्वयं सावधान हो जाय। **मध्यम पुरुष** वह है जो एक बार गलती का दण्ड भुगतकर पुन: गलती न करे तथा **अधम पुरुष** वह है, जो गलती पर गलती करता रहे; गलतियों का दण्ड भुगतता रहे; फिर भी सुधरे नहीं, चेते नहीं।''

सेठ जिनदत्त तीसरी श्रेणी का व्यक्ति था। क्या आप जानते हैं कि कुत्ते में एक गुण और तीन दुर्गुण होते हैं। यद्यपि कुत्ता स्वामीभक्त होता है, जो कि उसका अद्वितीय गुण है। कुत्ते जैसा स्वामी भक्त कोई नहीं होता; पर उसमें तीन दुर्गुण भी होते हैं ह्न

1. कुत्ता जबतक पिटता है, तभीतक काईं-काईं करता है, पिटना बंद होते ही फिर वही गलती करता है, जिसके कारण वह अभी-अभी पिटा है।

2. कुत्ते की पूँछ 12 वर्ष तक भी पुंगी में क्यों न डाली जाये, जब भी निकलेगी टेढ़ी ही निकलेगी।

3. कुत्ते में एक कमी यह भी होती है कि वह बिना प्रयोजन भी भौंकता रहता है और दूसरे कुत्तों को देखकर तो जरूर ही भौंकता है।

ये तीनों दुर्गुण सेठ जिनचन्द्र में भी थे। वह जिनुआ से जिनचन्द्र बनते ही जिनुआ की अवस्था में हुई दुर्दशा को भूल गया था और फिर उन्हीं गलतियों को करने लगा, जिनके कारण उसने दीर्घ काल तक दरिद्रता का दुख भोगा था। पैसा बढ़ते ही पुन: अभिमान के शिखर पर चढ़ गया; जबकि वह स्वयं पूजन में प्रतिदिन बोला करता था कि ह्न ''मान महाविषरूप करहि नीचगति जगत में'' फिर भी वह अपनी आदत से मजबूर था।

फुरसत के समय घर के बाहर द्वार के सामनेवाले चबूतरे पर आकर बैठ जाता। अपने बड़बोले स्वभाव और बिना प्रयोजन अधिक बोलने की आदत से वह कुछ न कुछ बोलता ही रहता। उसे बैठा देख कुछ चाटुकार खुशामदी प्रकृति के ठलुआ भैया भी आ बैठते; क्योंकि एक तो उन्हें कुछ काम नहीं होता। दूसरे, सेठ के साथ बैठकर उनका भी समय पास हो जाता। तीसरे, उन्हें सेठ को राजी रखकर अपना उल्लू सीधा करने का मौका मिलता।

अत: वे सेठ की झूठी/सच्ची बातों की हाँ में हाँ मिलाया करते और सेठ के साथ नकली हँसी हँसा करते। **(क्रमश:)**

हार्दिक बधाई !

जयपुर (राज.) : यहाँ राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान जयपुर द्वारा आयोजित सांस्कृतिक सप्ताह के अन्तर्गत दिनांक 25 से 31 दिसम्बर, 2004 तक विभिन्न प्रतियोगितायें सम्पन्न हुई।

जिसमें **अस्ति सर्वज्ञ** विषय पर आयोजित संस्कृत संगोष्ठी में श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के छात्र रमेश शिरहट्टी बाबानगर ने प्रथम, प्रशान्त उखलकर गोवर्धन ने द्वितीय एवं सतीश बोरालकर डोणगाँव ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

इसके अतिरिक्त **संस्कृत श्लोक अन्ताक्षरी** में भी प्रशान्त उखलकर ने द्वितीय एवं **स्त्री आरक्षणता का औचित्य** विषयपर आयोजित हिन्दी भाषण प्रतियोगिता में किशोर धोंगडे रहाटगाँव ने प्रथम तथा राहुल जैन अलवर ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

Effects of westeran culture विषय पर आयोजित अंग्रेजी भाषा की संगोष्ठी में राहुल जैन ने प्रथम एवं रमेश शिरहट्टी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। सम्पूर्ण कार्यक्रम के दौरान उक्त छात्रों को श्री श्रीयांसकुमारजी सिंघई, जयपुर का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

(पंचास्तिकाय परिशीलन, पृष्ठ 3 का शेष ....)

द्रव्यस्वभाव का ज्ञान कराते हैं। तीनों का सच्चा ज्ञान होने से प्रमाणज्ञान होता है।''

''यदि जीव यह जाने कि पर्याय में होनेवाले राग-द्वेष अथवा हर्ष-शोक मेरे मूल स्वभाव में नहीं है और शुद्ध चैतन्य की उपादेयरूप श्रद्धा करे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हैं।''

इसप्रकार इस ३८वीं गाथा में तीनप्रकार की चेतना की बात कहकर यह बताया है कि स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के कर्मफल चेतना ही प्रधानरूप से रहती है और वे उस स्थिति में हर्ष-शोक का वेदन करते हैं तथा त्रस जीवों में कर्मचेतना की मुख्यता है, उन्हें इष्टानिष्टपने के वेदन से राग-द्वेष के परिणाम होते हैं तथा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के चौथे गुणस्थान से सिद्ध भगवान पर्यन्त ज्ञानचेतना प्रमुख रहती है। ●

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) **फरवरी (द्वितीय)** 2005
J. P. C. 3779/02/2003-05

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पं. संजीवकुमार गोधा,**डबल एम.ए. जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन तथा इतिहास एवं **पं. जितेन्द्र वि.राठी,** शास्त्री
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें –
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127